(लघु कहानी)
मामला

पटना उस दिन भी वैसा ही था—सुबह की ठंडी हवा, चाय की दुकानों से उठती भाप, और सड़कों पर वही भागती ज़िंदगी। शहर को आदत थी आगे बढ़ते रहने की, रुकना उसे कभी पसंद नही आया।

अख़बार के तीसरे पन्ने पर एक ख़बर छपी थी—ना बहुत बड़ी, ना बहुत बोल्ड, बस कुछ पंक्तियाँ इतनी कि पढ़ी जाएँ, और भुला दी जाए। लेकिन कुछ ख़बरें काग़ज़ पर नही रुकती, वो दिल में उतर जाती हैं। वो भी एक लड़की थी—कोई नाम नही, कोई चेहरा नही, सिर्फ़ "मामला"। पर मामला कभी इंसान से बड़ा नही होता।

उसकी सुबह भी किसी और की तरह ही शुरू हुई थी—घर की खिड़की से आती धूप, माँ की आवाज़, और मन में बसी छोटी-छोटी उम्मीदें। उसे नही पता था कि उसी दिन उसका भरोसा टूट जाएगा—इतनी चुपचाप कि किसी को आवाज़ भी न सुनाई दे। शहर ने सुना, पर शहर रुका नही।

किसी ने कहा— "अफसोस की बात है।" किसी ने कहा— "आजकल ऐसा बहुत हो रहा है।" और किसी ने बस चैनल बदल दिया। उसके घर में घड़ी की सुइयाँ जैसे रुक गई थी। मां की आँखें खाली हो चुकी थी—जैसे रोना भी थक गया हो। पिता कुछ बोले नही; कुछ टूटने की आवाज़ अंदर ही अंदर आई थी।

वो बोलना चाहती थी, पर शब्द साथ नही थे। क्योंकि दर्द हमेशा चीख बनकर नही आता—कभी-कभी वो चुप्पी बनकर सीने में बैठ जाता है। रातें लंबी हो गईं, नीद दूर चली गई, और हर आहट डर जगा देती। आईने में खुद को देखती तो पहचान धुंधली लगती।

क्योंकि समाज घटना के बाद लड़की को बदल देती है—अपराध को नही। पटना तब भी चल रहा था—ऑटो, बसें, ट्रैफिक, शोर। पर हर शहर अपने भीतर कुछ कहानियाँ दबा देता है—और एक दिन वही कहानियाँ सवाल बनकर लौटती हैं। ये कहानी किसी एक की नही—ये हम सब से सवाल पूछती है।"

नंदिनी कुमारी
जंतु विज्ञान विभाग
2025-29
250118